रहीम का भाव वैविध्य का एक आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. आर.पी. वर्मा,
असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,
जनपद–उन्नाव, उ.प्र.

काव्य भावों की ही सरस अभिव्यक्ति होता है, अतः किसी काव्य में जितना अधिक भावों का वैविध्य होगा, उस काव्य का प्रभाव क्षेत्र उतना ही विस्तृत होगा। भावों की विशालता एवं विविधता कवि की बहुज्ञता तथा काव्य मर्मज्ञता पर आधारित होती है। कवि जितना अधिक वहुज्ञ और मर्मज्ञ होगा, उसकी भाव सम्पदा उतनी ही अथाह होगी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अनेक भाषाओं के ज्ञाता और अनेक समविषम जीवन क्षेत्रों के गम्भीर अनुभवी रहीम जितने बहुज्ञ थे, उतने ही संवेदनशील, मर्मज्ञ तथा कल्पना प्रबण थे। अतः इनके काव्य में भावों का काव्योचित वैविध्य होना स्वाभाविक ही है। इनका काव्य एक ओर संस्कृत के नीति आचार्यों विदुर, भर्तृहरि और चाणक्य आदि की श्रेणी में आता है, तो दूसरी ओर ये हिन्दी के नीति कवियों में मूर्धन्य कहे जा सकते हैं।

रहीम काव्य में जो प्रचुर भाव सम्पदा है, अध्ययन की सुविधा के लिए उसे चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–नीतिपरक, दर्शनपरक, भक्तिपरक और प्रकृतिपरक।

नीति काव्य में मनुष्य की आन्तरिक और ब्राह्य परिस्थितियों के साथ–साथ उसके कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का भी निर्देश होता है। मनुष्य जिस समाज में रहता है, उसकी सम–विषम परिस्थितियों में उसे किस प्रकार रहना चाहिए, यह नीति काव्यकार कवि का उद्देश्य होता है। रहीम काव्य में ऐसे वक्ताओं की अति प्रचुरता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

प्रेम भाव सर्वोपरि भाव है, इसीलिए इस भाव का सभी कवियों ने अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से वर्णन किया है। प्रेम ग्रन्थ को अत्यंत दुर्गम तथा कठिन माना गया है। रहीम के अनुसार, प्रेम पन्थ एक फिसलन भरी हुई राह के समान है, जिस पर यदि सावधानी से चला जाये तो लदे हुए बैलों को भी लेकर निकला जा सकता है, और यदि असावधानी से चला जाये तो चींटी के पैर भी फिसल जाते हैं–

रहिमन पैंडा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल।
बिछलत पांव पिपीलका, लोग लदावत बैल।।

यदि इस पर एक बार भी पैर फिसल जाये तो फिर संभलना कठिन ही है–

रहिमन मारग प्रेम को, मत मतिहीन मझाव।
जो डिगिहै तो फिर कहूं, नहीं धरने को पांव।।

प्रेम भाव अत्यंत विचित्र है। यह एक ऐसी अद्भुत अग्नि है कि यदि यह एक बार जल गई तो फिर बुझती नहीं, बल्कि बुझ–बुझकर सुलगती रहती है–

जे सुलगे ते बुझ गये, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझ–बुझ के सुलगाहिं।।

इसीलिए प्रेम भाव मिलने पर मनुष्य परम शान्ति का अनुभव करता है। इस परमानन्दपूर्ण समय में उसके लिए और कुछ प्राप्तव्य भी नहीं रहा जाता, बैकुंठधाम और कल्पवृक्ष भी नहीं। प्रियतम की बांहे

गले में पड़ जाने पर तो ढ़ाक भी अत्यधिक सुहावना लगने लगता है–

कहा करौं बैकुंठ लें, कल्पवृक्ष की बांह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल प्रीतम बांह।।

आदर्श प्रेमी भी वही है जो अपने प्रेमास्पद के बिछुड़ने पर अपने प्राणों को त्याग देता है। मछली आदर्श प्रेमी है। जो अपने प्रेमास्पद जल से बिछुड़ने पर तड़प–तड़पकर मर जाती है, और भौंरा स्वार्थी है जो कमल को छोड़कर अन्यत्र चला जाता है–

धनि रहीम गति तीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि, कहा भ्रमर को जाय।।

यह तो प्रेम का आदर्श रूप है। किन्तु संसार में या समाज में ऐसा प्रेम भाव नहीं होता। समाज का प्रेम तो दुर्बलताओं तथा स्वार्थों पर टिका होता है, जो कभी बहुत प्रगाढ़ हो जाता है, और कभी टूट ही जाता है। इसीलिए रहीम का कहना है कि कभी भी प्रेम को मत तोड़ो। टूटने पर प्रेम या तो फिर जुड़ता ही नहीं है, और यदि जुड़ता है तो वह गांठ–गंठीला हो जाता है–

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरहु चटकाय।
टूटे से फिर ना जुरै, जुरै गांठ परि जाय।।

प्रेम में हृदय की सरलता होनी आवश्यक है। जो व्यक्ति निष्कपट और निःस्वार्थ प्रेम करता है, उसी का प्रेम भाव वरेण्य है। धोखे से भरा हुआ अथवा दिखावटी प्रेम कभी भी नहीं करना चाहिए। इसी वक्तव्य को रहीम ने खीरे के माध्यम से व्यक्त किया है जो देखने से तो एक दिखाई देता है परन्तु उसके अन्तर तीन फांके होती हैं–

रहिमन प्रीत न कीजिए, जस खीरा के कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फांके तीन।।

सभी सन्तों, वीतरागियों तथा विद्वानों ने धन सम्पत्ति के प्रति घोर विरक्ति का भाव प्रकट किया है, और अपने इस भाव को विविध विधियों से व्यक्त किया है। सभी ने बताया है कि लक्ष्मी चंचल होती हैं, कहीं स्थिर होकर नहीं ठहरती, इसीलिए इसके प्रति मोह करना अज्ञानता है। रहीम ने लक्ष्मी के चंचल होने का जो कारण बताया है, वह बहुत ही व्यावहारिक तथा प्रभावशाली है। समाज में तो यही देखने में आता है कि जिस युवती पत्नी का पति वृद्ध हो, वह प्रायः निरंकुश और चंचल हो जाती है। यही कारण रहीम ने भी बताया है–

कमला चिर न रहीम महि, यह जानत सब कोय।
पुरूष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय।।

यहां 'पुरातन' शब्द का प्रयाग बहुत ही सार्थक और कल्पना प्रवण है।

समाज और जीवन में धन का अत्यधिक महत्व है। यह तथ्य रहीम ने पुस्तकों के आधार पर ही नहीं, अपने जीवन के अन्तिम दिनों में, नितान्त निर्धनता का जीवन बिताते हुए, भली प्रकार हृयंगम कर लिया था। उस जीवन दशा के इन्होंने अत्यंत मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। यथा–

रहिमन निज सम्पत्ति बिना, कोउ न विपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रवि सकै बचाय।।

अपनी सम्पत्ति के बिना कोई भी निर्धन की सहायता नहीं कर सकता, भले ही वह उसका परम हितैषी क्यों न हो। जिस प्रकार, जल के अभाव में सूर्य भी, जो कमल का परम मित्र है, कमल की रक्षा नहीं कर पाता। जल के बिना वह सूख ही जाता है।

यद्यपि धन का जीवन में अत्यधिक महत्तव है, किन्तु वही धन उचित है जो सम्मान पूर्वक अर्जित किया गया हो। ऐसा अर्जित धन थोड़ा होने पर भी व्यक्ति के सम्मान को बढ़ाता ही है, जिस प्रकार फटे हुए वस्त्रों के धारण करने पर भी कल–वधू की शालीनता प्रकट होती रहती है–

धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलवधू, चिथड़न मांहि समात।।

और सम्मान ही जीवन का सार तत्त्व है–

रहिमन मोहि न सुहाय, अभिय पिआवत मान बिनु।
बरू विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो।।

भाग्य की भांति ही भाग्यविधाता भी बड़ी प्रबल होती है। भाग्यहीनता के कारण जब मनुष्य पर कुसमय आता है तो उसका सभी कुछ नष्ट हो जाता है, उसके अपने भी अपने नहीं रहते हैं। बल्कि वे भी शत्रु बन जाते हैं। प्रकाश की आवश्यकता होने पर नारी दीपक को अपने अंचल में छिपाकर उसे बुझने से बचाती है, और जब प्रकाश की आवश्यकता नहीं रहती तो उसी अंचल से उसे बुझा देती है। दीपक के अच्छे समय में जो अंचल उसका हितैषी और रक्षक था, कुसमय में वही उसका शत्रु बन जाता है–

जिहि अंचल दीपक दुर्‌यो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु हौ जात।।

जब कुसमय आता है तो वह सभी कुछ नष्ट कर देता है। उसके आने पर जोड़ी हुई अगाध सम्पत्ति उसी प्रकार अदृश्य हो जाती है, जिस प्रकार प्रभात आने पर आकाश में चमकते हुए असंख्य तारे छिप जाते हैं। उस अवस्था में, समाज के सारे जीवित सम्बन्ध भी समाप्त हो जाते हैं। स्त्री और पुत्र भी तो अपने नहीं रह पाते–

धन दारा औ सुतन सो, लगो रहे नित चित्त।
नहिं रहीम कोऊ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त।।

ऐसी अवस्था आने पर, मनुष्य को विचलित नहीं होना चाहिए। बल्कि उसे संयमित होकर उसके सहन करना चाहिए, और अच्छे दिनों के आने की प्रतीक्षा करनी चाहिए–

रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देख दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइ हैं, बनत न लगि हैं बेर।।

भारतीय संस्कृति में भाग्य को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। यद्यपि पुरूषार्थ की भी उतनी ही मान्यता है, परन्तु भाग्य को अपेक्षाकृत बलवत्तर माना गया है। रहीम ने इसी मान्यता को इस प्रकार व्यक्त किया है–

महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष।
सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेष।।

जो अर्जुन इतना वीर तथा धनुर्धारी था कि अपने बाणों से समूचे आकाश को आच्छादित कर देता था उसे ही महाराज विराट के महल में उनकी पुत्री उत्तरा को नृत्य की शिक्षा देने के लिए नारी का वेश धारण करना पड़ा था। इसी प्रकार भीम का पूरूषार्थ भी कुछ काम नहीं आया, और उसे भी विराट का रसोइया बनना पड़ा–

जो पुरूषार्थ ते कहूं, सम्पति मिलत रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम।।

समाज में अच्छे–बुरे दोनों प्रकार के ही व्यक्ति रहते हैं। रहीम ने इन दोनों के स्वभावों का तथा प्रभावों का वर्णन किया है। अच्छे अथवा बड़े लोगों का स्वभाव अहंकार विहीन होता है। वे अच्छे तथा परोपकारपूर्ण कार्य करके अन्य लोगों को सुख तो पहुंचाते हैं, किन्तु अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करते। जिस प्रकार हीरा अपनी बहु–मूल्यता का स्वयं वर्णन नहीं करता–

बड़े बड़ाई ना करैं, बडो न बोलै बोल।
रहिमन हीरा कब कहे, लाख टका मेरो मोल।।

इसके विपरीत, नीच अथवा दुष्ट व्यक्ति न केवल आत्माप्रशंसा ही करते हैं, बल्कि वे जब भी अवसर मिलता है दूसरों का अहित ही करते हैं, भले ही वे उनके साथ कितना ही अच्छा व्यवहार क्यों न करें। जैसे, सांप को चाहे जितना दूध पिलाओ, किन्तु अवसर पाते ही वह काटे बिना नहीं रहता–

रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हूं, सांप सहज धरि खाय।।

इसीलिए दुष्टों के साथ न तो प्रीति करनी अच्छी होती है और न द्वेष करना। जिस प्रकार कुत्ता चाहे प्यार से चाटे या क्रुद्ध होकर काटे, व्यक्ति के लिए दोनों ही कष्टकारक है। दुष्टों की संगति भी कष्टकारिणी ही होती है। यदि कोई सज्जन भी दुष्टों के साथ देखा जाये तो देखने वाले उसे भी उन जैसा ही दुष्ट समझने लगते हैं। जैसे, शराबी के हाथ में दूध को भी लोग शराब ही समझते हैं–

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझैं सब ताहि।।

चिन्ता एक मानसिक भाव है जो व्यक्ति को अन्दर ही अन्दर जलाता रहता है। यह वह आग है जो प्रचंड तो बहुत है, परन्तु जिसका धुंआ किसी को भी दिखाई नहीं देता। सभी कवियों ने इस भाव का प्रायः ऐसा ही वर्णन किया है। गिरिधरदास ने कहा है–

चिन्ता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाय।
प्रगट धुवां नहिं देत हैं, उन अन्तस धुंधियाय।।

ऐसा ही वर्णन रहीम ने भी किया है–

अन्तर दाव लगी रहे, धुआं न प्रगटे सोय।
कै जिस जानै आपुनों, जा सिर बीती होय।।

इसके अतिरिक्त, आत्मप्रशंसा, क्षमा, सहनशीलता कुपुत्र, सुपुत्र, पतिव्रता, गुहता, क्रोध, आदि अनेक भावों की भी रहीम ने सफल अभिव्यक्ति की है। रहीम का नीति काव्य इन भावों से सर्वतः ओतप्रोत है।

दर्शनपरक

काव्य चिन्तनपरक होता है, अतः उसमें दर्शन की व्यंजना स्वाभाविक ही है। विचारक की दार्शनिक अभिव्यक्ति और कवि की दार्शनिक अभिव्यक्ति में एक विशेष अन्तर यह होता है कि विचारक का कथन ज्ञान गरिमा से बोझिल होता है, किन्तु कवि की अभिव्यक्ति सरस एवं हृदयस्पर्शी होती है, क्योंकि वह संवेदना से मंडित होती है। इसी लिए दार्शनिक सिद्धान्तों की ज्ञान गरिमा को लिए हुए भी कवि की दार्शनिकता संवेदना प्रवण होने से अपेक्षाकृत अधिक रमणीय होती है।

रहीम काव्य में भी दर्शन सिद्धान्तों से सम्बन्धित अनेक भावों की अभिव्यक्ति हुई है। सभी दार्शनिकों ने जीवन की क्षणभंगुरता की तुलना पानी में सहज ही घुल जाने वाले कागद के पुतले से की है।

कागद को सो पूतरा, सहजहि में ही घुल जाय।
रहिमन यह अचरज लख्यौ, सो ऊ खेंचत बाय।।

मनुष्य का मन बड़ा चंचल तथा विषय सुखों का लालची होता है, इसीलिए वह सारे जीवन सांसारिक मोह माया में ही लिप्त रहता है, और अन्त समय आने पर वह अपने पापों पर पछताता है–

कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अन्त चले पछिताय।।

इसीलिए संसार के विषय भोगों से छुटने का एक मात्र साधन ईश्वर की शरण है, क्योंकि ईश्वर ही शक्तिशाली है, वही अपनी इच्छानुसार सभी कुछ कर सकता है। इसके विपरीत, निरीह मनुष्य तो कुछ भी नहीं कर सकता–

रहिमन मनहि लगाय के, देख लेउ किन कोउ।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होय।।

इन पंक्तियों में कवि की ईश्वर के प्रति असीम आस्था की अभिव्यंजना है। और–

जो विषया सन्तन तजी, मूढ़ ताहि लपरात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात।।

इस दोहे में सांसारिक विषयों की निस्सारता तथा उनके प्रति मनुष्यता की आसक्ति का वर्णन करते हुए जिस उदाहरण की संयोजना की गई है, उससे इन विषयों के प्रति घृणा का गहरा भाव उम् आता है। यह कवि की श्लाघ्य कल्पना क्षमता का परिचायक है।

जीवन की अस्थिरता का वर्णन करते हुए उसकी प्रभावोत्पादकता के लिए अनेक कवियों ने नगाड़े का उपमान अपनाया है। रहीम ने भी इसी उपमान का अत्यंत सार्थक प्रयोग किया है–

सदा नगरा कूच का, बाजत आठों जाम।
रहिमन या जग आइकै, को करि रहा मुकाम।।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनमें रहीम की वैचारिकता कवि की काव्यक्षमता के कारण रमणीय प्रवाहों में प्रवाहित हुई है।

भक्तिपरक

रहीम वैष्णव सम्प्रदाय द्वारा प्रतिपादित भक्ति मार्ग के अनुयायी हैं। इनकी भक्ति भावना में श्रीकृष्ण के प्रति वही आत्मीयता परिप्रोत है जो पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों में दिखाई देती है। जिस प्रकार सूरदास की भक्ति में उनके हृदय की विशाल उदारता निहित है जिसके कारण वे श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भाव रखते हुए भी गंगा, यमुना, राम, शंकर आदि देवताओं की वन्दना करते हैं, उसी प्रकार रहीम की भक्ति भावना में भी यही उदारता परिलक्षित होती है। ये गंगा की वन्दना जिस प्रकार एक परम भक्त की भावना से करते हैं–

अच्युत–चरन–तरंगिनी, सिव–सिर–मालति–माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इन्दव भाल।।

उसी प्रकार राम की भक्तवत्सलता पर भी पूर्ण आस्था व्यक्त करते हैं–

गहि सरनागति राम की, भव सागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाय।।

और निम्नलिखित दोहे में गज ग्राह की कथा का संकेत देकर श्रीकृष्ण की अपार करूणा का महत्तव वर्णित है–

बड़े दीन को दुख सूने, लेत दया उन आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि।।

जो हरि बिना किसी परिचय के, केवल दुखी का आर्त्तनाद सुनकर ही, उसकी सहायता के लिए नंगे पैर ही दौड़ पड़ते हैं, उन जैसा दयालु और कौन हो सकता है? इसीलिए तो ये स्वयं को माखन खाने वाले भक्तवत्सल श्रीकृष्ण को सौंपकर नितान्त निश्चिन्त हो जाते हैं–

रहिमन को काउ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पत राखनहार है, माखन चाखनहार।।

जिस प्रकार, सगुण भक्त कवि राम और श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं मानते, दोनों की समान श्रद्धा से आराधना करते है, उसी प्रकार रहीम भी इन्हें एक ही परमब्रह्म को दो रूपों में व्यक्त हुआ मानते हैं। इसीलिए ये जितनी श्रद्धा से श्रीकृष्ण की वन्दना करते हैं, उतनी ही श्रद्धा और विश्वास से राम की भी भक्तवत्सलता के गुण गाते हैं–

मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे राम जू, तीनों मेरे अंग।।

अर्थात् हे श्री राम! तुमने पाषाण बनी हुई गौतम पत्नी अहिल्या, पशु योनि, वानर रूप आदि और अकुलीन निषाद आदि का उद्धार किया। अतः मेरा भी आपको उद्धार करना होगा, क्योंकि मैं तो आपकी भक्ति से विहीन होने के कारण वज्र मूर्ख, पशु समान विषयों में आचरण करने वाला तथा अपने पापों से अपने कुल की अधोगति करने वाला हूं। इसी भाव को रहीम ने अपने संस्कृत के इस श्लोक में और भी अधिक स्पष्ट किया है–

अहिल्या पाषाणः प्रकृति पशुरासीत् कपिचमूः
गुहो ऽ भूच्चांडालस्त्रितममपि नीतं निजपदम्।
अहं चित्तेनाश्यमः पशुरपि तवार्चादि करणे
क्रियाभिश्चांडालो रघुवर न मामुद्धरसि किम्।।

हे रघुवर! अहिल्या पाषाण थी, कपि सेना स्वभाव से पशु थी, गुहराज चांडाल था, फिर भी आपने इन तीनों को अपने चरणों में शरण दी। मेरा चित्त भी पत्थर है, आपकी पूजा अर्चना करने में मैं भी पशुवत् उदासीन हूं, और दुष्कर्म करने में चांडाल हूं। मुझे एक में ही ये तीनों विशेषताएं हैं, फिर भी न जाने आप मेरा उद्धार क्यों नहीं करते?

यदि रहीम की भक्ति भावना पर गम्भीरता से विचार किया जाये तो यह निष्कर्ष सहज ही निकल आता है कि ये अनेक देवोपासक होते हुए भी वैष्णव भक्ति से अधिक प्रभावित थे। यही कारण है कि श्रीमद्भागवत द्वारा प्रतिपादित नवधा भक्ति के सभी अंगों के वर्णन इनके काव्य में सहज ही मिल जाते हैं। श्रीहरि के गुणों का श्रवण करना, उनका कीर्तन करना, उनका निरन्तर स्मरण करना, उनके चरणों की सेवा करना, उनकी अर्चना करना, वन्दना करना, उनके प्रति दास तथा सखा का भाव रखना और उनके समक्ष अपने सभी पापों का अनावरण कर देना ये नवधा भक्ति के नौ अंग हैं–

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यात्मनिवेदनम्।।

यदि इन अंगों का समाहार किया जाये तो आत्म निवेदन, दास्य और सख्य ये तीन अंग ही प्रमुख हैं। श्रवण आदि अन्य अंग इन्हीं में समाहित हो जाते हैं। आत्मनिवेदन में जहां भक्त अपने दुर्गुणों को व्यक्त करके अपने आराध्य से कृपा याचना करता ह, वहीं वह उनके गुणों का भी वर्णन करता है।

भगवान गुणातीत होते हुए भी सभी सम–विषम गुणों का भंडार है, अतः उसके गुणों का कोई अन्त नहीं है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

अमर बेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिए काहि।।

इसमें भगवान का परम पोषक रूप वर्णित है। जो प्रभु जड़हीन अमरबेल का प्रतिपालन करता है, उस जैसा पालन पोषण करने वाला और कौन हो सकता है।

इसी प्रकर जो हरि माता के गर्भ में शिशु की रक्षा करता है, वह परम रक्षक सर्वत्र ही अपने भक्त की रक्षा करता है, अतः मनुष्य को उसके रक्षक रूप में अडिग विश्वास रखना चाहिए–

रन बन व्याधि विपत्ति में, रहिमन मरै न रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गए कि सोय।।

राम नाम का अपार महत्त्व है। यदि यह नाम किसी के मुख से धोखे से भी निकल जाये, तो भी यह उसकी सभी कामनाओं को पूर्ण कर देने वाला होता है। ऐसे अपरिमित प्रभाव से परिपूर्ण नाम का स्मरण जिस मनुष्य ने नहीं किया, उसने व्यर्थ ही अपना जीवन गंवा दिया–

राम नाम जान्यो नहीं, जान्यों सदा उपाधि।
कहि रहीम तिहि आपुनो, जनम गंवायो बादि।।

इसीलिए राम की शरण ही एकमात्र वह आश्रयस्थल है जहां पहुंचकर मनुष्य के सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। केवल उसी की आराधना करने

से भक्त की सभी कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं, और केवल उसी का त्याग करने से सभी काम प्रसिद्ध हो जाते हैं। अतः जिस प्रकार केवल जड़ को सींचने से ही पौधा फलता–फूलता है, उसी प्रकार केवल राम का आश्रय लेने से ही व्यक्ति पूर्ण काम हो जाता है–

एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय।
रहिमन मूलहिं सीचबौ, फूलहि फलहि अघाय।।

अपने आराध्य के साथ भक्त के दो भावों से सम्बन्ध होते हैं–दास्य भाव और सख्य भाव। दास्य भाव में भक्त स्वयं को दास तथा अपने आराध्य को स्वामी मानकर एक मर्यादित व्यवहार का अनुसरण करता है, और सख्य भाव में सखा भाव से उसकी भक्ति करता है। इस भाव में प्रमुखता प्रेम की ही होती है। कृष्ण भक्त कवियों ने इन दोनों अंगों का अपेक्षाकृत विस्तार से वर्णन किया है। रहीम में भी ये दोनों भाव मिलते हैं। यथा–

1. **गहि सरनागति राम की, भव सागर की नाव।**
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाय।।
2. **रहिमन करि–सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।**
दांत दिखावत दीन है, चलत घिसावत नाक।।

ये दोनों दोहे दास्य भाव के उदाहरण हैं। पहले दोहे में भगवान की शरण का महत्व है, और दूसरे में उस हाथी की दीनता का जिसकी श्रीहरि ने ग्राह से रक्षा की थी।

सख्यत्भाव में चूंकि प्रेम की प्रधानता होती है, इसीलिए उसमें मर्यादा की कठोरता का अभाव होता है। इस भाव में प्रकारान्तर से भक्ति भाव की अभिव्यक्ति होती है। यथा–

1. **खैंचि चढ़नि ढ़ीली ढरनि, कतहु कौन यह रीति।**
आज कालि मोहन गही, बंस दिया की रीति।।
2. **हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।**
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर।।

इन दोनों दोहों में रहीम ने अपने आराध्य की निष्ठुरता के माध्यम से उनके प्रति अपनी अगाध अनन्यता का संकेत दिया है। कहने को तो ये कहते हैं कि जिस प्रकार बांस पर लटकाया हुआ दीपक डोरी खींचने पर ऊपर चढ़कर दूर हो जाते हैं, और डोरी ढ़ीली छोड़ने पर समीप आ जाता है। और जिस प्रकार कमान पर चढ़ा हुआ बाण जितना खींचा जाये, उतना ही समीप होता जाता है, और छोड़ दिया जाये तो दूर चला जाता है, उसी प्रकार हरि के प्रति भी जितनी उदासीनता दिखाई जाये, उतने ही वे कृपालु हो जाते हैं, और जितनी उनकी भक्ति की जाये, उतने ही वे कठोर हो जाते हैं। वस्तुतः इन दोहों का वर्ण्य हरि की उदासीनता या कठोरता नहीं, वरन् भक्त की उस परम भक्ति भावना की अभिव्यक्ति है जो उसके हृदय में निरन्तर पनपती रहती है।

अतः कहा जा सकता है कि रहीम की भक्ति भावना में अपने आराध्य के प्रति वैसी ही अनन्यता एवं विश्वासमयी आस्था है, जैसी भक्त कवियों में देखी जाती है। इसीलिए भगवान राम कृष्णादि की सगुण भक्ति वीथिका को नीति की पुनीत एवं लोकोपयोगी जलधार से अभिसिंचित करने वाले इस इस्लाम धर्मावलम्बी कवि की जितनी सराहना की जाये, थोड़ी है।

मानव और प्रकृति का आदिकाल से ही अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है, इसीलिए प्रकृति विविध रूप धारण करके मानव मन को प्रफुल्लित तथा भावमय बनाती रही है। कवियों के लिए तो प्रकृति भावों का अक्षर भण्डार रही है। यही कारण है, प्रत्येक कवि के काव्य में प्रकृति के विविध रूपों का दर्शन सहज ही हो जाता है। यथा–प्रकृति का आलम्बन रूप, प्रकृति का उद्दीपन रूप, प्रकृति का अलंकरणात्मक रूप, प्रकृति का उप देशात्मक रूप, प्रकृति का मानवीकरण रूप, प्रकृत का अन्योक्तिपरक रूप और प्रकृति का रहस्यात्मक रूप।

जहां कवि प्रकृति के दृश्यों का यथातथ्यात्मक एवं भावात्मक वर्णन करता है, वहां प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण होता है। रहीम ने प्रकृति के आलम्बर रूप के द्वारा जो चित्र प्रस्तुत किये हैं, वे भी निरे आलम्बन न होकर अन्य भाव की भी अभिव्यंजना करते हैं। यथा–

दादुर मोर किसान मन, लग्यो रहे घन माहिं।
रहिमन चातक रटनिहूं, सरवर को कछु नाहिं।।

आकाश में उमड़ते हुए बादलों को देखकर मेंढक, मोर और किसान का मन जल प्राप्ति की आशा से प्रफुल्लित हो उठता है, और चातक का मन स्वाति बूंद के लिए लालायित होने लगता है। ये सभी बादल से ही जल पाने की आशा करते हैं, सरोवर से इनका कोई प्रयोजन नहीं होता। अभिव्यंजित भाव यह है कि जो जिस पर आसक्त है, वह उसे ही चाहता है, उसे छोड़कर किसी अन्य को नहीं चाहता। उसी प्रकार–

दोनों रहिमन एक से, जा लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसन्त के माहिं।।

इसमें भी कौवा और कोयल के परिचय का आधार बसन्त ऋतु को बताकर कवि यह भाव व्यक्त करता है कि वाणी ही प्राणियों के व्यक्तित्व और जाति की परिचायक है।

जब प्रकृति को देखकर भावों की उद्दीप्ति होती है, तो वह प्रकृति की उद्दीपन रूप में चित्रण कहलाता है। यों तो किसी भी दशा में प्रकृति भावों को उद्दीप्त कर सकती है, और करती है, किन्तु इसके इस रूप का प्रयोग कवियों ने अधिकांशतः श्रंगार रस के अन्तर्गत किया है। रहीम द्वारा वर्णित प्रकृति का यह रूप परम्परा से कुछ हटकर है। यथा–

रहिमन रजनी ही भली, पिय सों होय मिलाप।
खरो दिवस केहि काम कौ, रहिबौ आपुहि आप।।

यहां किसी बिरही या विरहिणी की मनोदशा का वर्णन न होकर प्रकृति के द्वारा कवि ने अपने ही वक्तव्य की पुष्टि की है। यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से रात की अपेक्षा दिन को अच्छा माना जाता है, किन्तु कवि ने यहां दिन की अपेक्षा रात की श्रेष्ठता प्रति पादित की है। रात इसीलिए श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें प्रियतम और प्रिया के संयोग का अवसर होता है, जबकि दिन में उन्हें बिछुड़ना पड़ता है।

सम और विषम भावों का महत्व एक दूसरे पर आधारित होता है। मीठा तब और अधिक स्वादिष्ट लगने लगता है यदि उसमें पूर्व नमकीन खाया गया हो। और नमकीन का स्वाद मीठे के बाद और अधिक बढ़ जाता है। इसी भाव को आधार बनाकर रहीम ने नायिका के नेत्र तथा अधर के सौन्दर्य का प्रभाव–वर्णन किया है–

नैन सलौने अधर मृदु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लौन पर अरू मीठे पर लौन।।

संयोग में प्रकृति का नगण्य से नगण्य दृश्य भी परम सुखदायक बन जाता है। यदि वियोग दशा हो तो बैकुंठधाम और कल्पवृक्ष की छाया भी अच्छी नहीं लगती, और यदि संयोग दशा हो तो ढाक भी सुहावना लगता है–

कहा करौं बैकुंठ ले, कल्पवृक्ष की छांह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल प्रीतम बांह।।

जब प्रकृति के उपकरणों को अलंकार रूप में प्रयुक्त करके कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है तो वह प्रकृति का अलंकरण रूप में प्रयोग होता है। रहीम ने प्रकृति का इस रूप में में भी सफलता से प्रयोग किया है। पुत्रों की सुपुत्रता एवं कुपुत्रता का वर्णन दीपक के माध्यम से कितना हृदयस्पर्शी है–

1. **जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।**
बारे उजियारो लगे, बढ़े अंधेरो होय।।
2. **2. जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।**
बढ़े उजेरे तेहि रहें, गए अंधेरो होय।।

जिस प्रकार जब दीपक जलता रहता है तो चारों ओर प्रकाश छाया रहता है, और जब वह बुझ जाता है तो चारों ओर अन्धकार छा जाता है। उसी प्रकार जब पुत्र छोटा होता है तो उस पर कुल की बड़ी–बड़ी आशाएं टिकी होती हैं, किन्तु जब वह बड़ा हो जाता है, और अनुचित कार्य करने लगता है तो कुल की सारी आशायें ही नष्ट हो जाती हैं।

सत्संगति और कुसंगति के भावों की भी रहीम ने प्रकृति के माध्यम से प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति की है। सज्जनों पर कुसंगति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इस भावाभिव्यक्ति के लिए कवि ने चन्दन वृक्ष को अपनाया है, जिसके चारों ओर विषधर सर्प लिपटे रहते हैं, किन्तु उनके विष का चन्दन वृक्ष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसकी सुगन्धि ज्यों की त्यों बनी रहती है–

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का कर सकै कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग।।

इसी प्रकार, यह नीतिपरक कथन भी अत्यंत मार्मिक है–

रहिमन असमय के परे, हित अनहित है जाय।
बधिक बधै मृग बान सों, रूधिरै देत बताय।।

जब शिकारी मृग को बाण मार देता है तो वह घायल होकर भी भागकर कहीं जा छिपता है, किन्तु उसका पृथ्वी पर गिरता हुआ रक्त उसको पकड़वा देता है। इसी प्रकार जब बुरा समय आता है तेा अपने भी शत्रु बन जाते हैं।

रहीम का अधिकांश काव्य प्रकृति के इसी रूप में अलंकृत है।

किसी प्रकार का उपदेश देने के लिए भी कवि प्रकृति का उपयोग करता है। प्रकृत के इस रूप को प्रकृति का उपदेशात्मक रूप कहा जाता है। प्रकृति के अन्य रूपों की भांति इस रूप का भी प्राचीन काल से ही कवियों द्वारा प्रयोग होता आया है। रहीम का काव्य भी इस प्रकार के प्रयोगों से परिपूर्ण है। यथा–

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन।।

इस दोहे में संगति के प्रभाव का वर्णन किया गया है। मनुष्य जिस प्रकार की संगति में बैठता है, उसका स्वरूप भी वैसा ही हो जाता है, जिस प्रकार स्वाति नक्षत्र की एक बूंद ही स्थान भेद से तीन रूप धारण कर लेती है। यदि वे केले में पड़ जाती है तो कपूर बन जाती है, यदि वह सीपी में पड़ जाती है तो मोती बन जाती है, और यदि सांप के मुंह में पड़ जाती है तो विष बन जाती है। इसी प्रकार, मनुष्य भी जैसी संगति में बैठता है, वह वैसा ही बन जाता है।

आवत काज रहीम कहि, गाढ़े बन्धु सनेह।
जीरन होत न पेड़ ज्यौं, थामे बरै बरेह।।

वटवृक्ष जितना पुराना होता जाता है, उतनी ही उसकी शाखाएं पृथ्वी में घुसती जाती हैं, और उस वृक्ष को सहारा देती जाती हैं। इसी घटना को लेकर रहीम कहते हैं कि बन्धु बांधव ही विपत्ति में सहायक बनते हैं, जिस प्रकारण जीर्ण वटवृक्ष की शाखाएं उसे थामे रहती हैं, पृथ्वी पर गिरने नहीं देती।

कह रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग।।

जिस प्रकार कांटेदार झाड़ी और केले का एक साथ निर्वाह नहीं हो सकता, क्योंकि जब झाड़ी अपने आनन्द में हिलती है तो वह केले के पत्तों को चीर देती है, उसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति अपने सहज स्वभाव के कारण ही अपने साथ रहने वाले सज्जन को असहाय पीड़ा देता है।

यद्यपि भारत में गंगा की अपार महिमा है, फिर भी जब वह समुद्र में जा मिलजी है तो उसका अस्तित्व और नाम दोनों ही समाप्त हो जाते हैं। इससे यही शिक्षा मिलती है कि चाहे कोई कितना ही प्रतिष्ठित क्यों न हो, दूसरे के घर जाने पर उसकी महिमा और प्रभुता नष्ट हो जाती है–

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम।।

भगवान या भाग्य का मानव जीवन में विशेष महत्तव होता है। इन्होंने जिसे बड़ा बना दिया, वह बड़ा ही बना रहता है, भले ही उसमें कितने ही दोष क्यों न हों। जिस प्रकार चन्द्रमा कलंकपूर्ण और घटने–बढ़ने वाला है–दुर्बल तथा कुबड़ा होता रहता है, फिर भी वह तारों से श्रेष्ठ ही माना जाता है–

जो रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि।।

जब प्रकृति पर चेतना का आरोप करके उसका सजीव प्राणी की भांति प्रयोग किया जाता है, तो वह प्रकृति का मानवीकरण कहलाता है। प्रकृति चित्रण की यह शैली परिलक्षित होते हैं। यथा–

जलहिं मिलाय रहीम ज्यों, कियो आपु सम वीर।
अंगवहि आपुहि आप त्यों, सकल आंच की मीर।।

इस दोहे में दूध और पानी का मानवीकरण करके उन्हें सच्चे मित्र के रूप में चित्रित किया गया है। जब दूध ने पानी को अपने में मिलाकर अपने समान ही बना लिया, तब दूध की मित्रता का निर्वाह करने के लिए पानी ने दूध की रक्षा के लिए स्वयं को जला दिया।

तरूवर फल नहीं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, सम्पत्ति संचहि सुजान।।

इस दोहे में तरूवर तथा सरोवर का मानवीकरण है। और–

पसरि पत्र झम्पहि पितहिं, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल फसल के, को बैरी को मीत।।

इसमें कमल, जल तथा शशि का मानवीकरण है, जिससे वक्तव्य की भाव ममता उत्कर्षक हो गई है।

काव्य में प्रकारान्तर से कहा हुआ कथन ही अधिक चमत्कारी होता है, अतः इसमें अन्योक्ति का विशेष महत्व होता है। अन्योक्ति का अर्थ है–प्रकारान्तर से अन्य के प्रति कही गई उक्ति, अर्थात् जहां प्रस्तुत अर्थ से अप्रस्तुत अर्थ का बोध होता है। अन्य संस्कृत एवं हिन्दी के महाकवियों की भांति रहीम ने भी प्रकृति के अन्योक्तिपरक प्रयोग किये हैं जो अत्यन्त सार्थक एवं भाव प्रवण हैं। यथा–

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर बक्ता भये, हमको पूछत कौन।।

यह तयि इतिहास सम्मत है कि मृत्यु के पश्चात जब उनका पुत्र जहांगीर सिंहासनारूढ़ हुआ था तो अनेक नीतियों के कारण रहीम और जहांगीर में गम्भीर मतभेद उत्पन्न हो गये थे, जिनके कारण उसने रहीम को सभी राज्य प्रदत्त सुविधाओं एवं सम्पत्तियों से वंचित करके अपने दरबार से निकाल दिया था तब रहीम के विरोधियों की बन आई थी, और वे ही ऊंचे–ऊंचे पदों पर आसीन हो गये थे। उनकी तथा अपनी इसी स्थिति का वर्णन रहीम ने अन्योक्ति द्वारा इन पंक्तियों में व्यक्त किया है। इसी प्रकार–

रहिमन अब वे बिरछ कहं, जिनकी छांह गम्भीर।
बागन बिच बिच देखियत, सेंहुड़ कंज करीर।।

इस दोहे में उन महापुरूषों के अभाव का संकेत है जो महान परोपकारी थे। अब वे महापुरूष तो नहीं रहे जेा सभी को आश्रय देते थे, बल्कि वे तुच्छ लोग रह गये हैं जो किसी को भी तनिक सा भी आश्रय देने में असमर्थ हैं। और–

अंड न बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान।
हस्ती ढक्कता कुल्हाड़िन सहैं, ते तरूवर आन।।

अर्थात् हे अरंड के तुच्छ वृक्ष! तू अपने चिकने पत्तों को देखकर गर्व मत कर। क्योंकि वे श्रेष्ठ वृक्ष तो और ही होते हैं जो हाथियों के धक्के और कुल्हाड़ियों के प्रहार सह लेते हैं। स्पष्ट है कि यहां तुच्छ व्यक्तियों की तुच्छता का वर्णन अभिप्रेत है।

प्रकृति और काव्य का चिरकाल से ही अटूट सम्बन्ध रहा है। मनुष्य आजीवन उसके परिवर्तित दृश्यों में गहरी रहस्यानुभूतियों की प्रेरणा पाता रहा है। यही कारण है कि प्रकृति के माध्यम से मनुष्य ने अपनी दार्शनिक और रहस्यात्मक अनुभूतियों को सरसता से अभिव्यक्त किया है।

मन की चंचलता इन्द्रियों के कारण ही होती है। यदि इन्द्रियों को वश में कर लिया जाये तो मन स्वतः ही स्थिर हो जाता है, विषम वासनाओं को त्याग देता है। दर्शन शास्त्रों का यही परम गूढ़ भाव रहीम ने अत्यन्त काव्यमयी शैली में प्रकृति चित्रण का आश्रय लेकर इस प्रकार किया है–

जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहुं किन जाहिं।
जल में जो छाया परी, काया भीजति नाहिं।।

जिस प्रकार, जल में परछाईं पड़ते हुए शरीर को वह छाया भिगो नहीं पाती इसी प्रकार इन्द्रिय निग्रह होने पर भले ही मन विषयें से संसिक्त रहे, पर उन विषयों का कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ता।

जीवन की नश्वरता का वर्णन रहीम ने इन शब्दों में किया है–

कागद को सौ पूतरा, सहजहिं में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खैंचत जाय।।

जिस प्रकार कागज का पुतला सहज ही पानी में घुलकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार यह शरीर भी क्षणभंगुर है, फिर भी मनुष्य इसके अहंकार में निरन्तर डूबा रहता है।

मनुष्य शरीर पृथ्वी, जल आदि पांच तत्त्वों से बना हुआ है। जब इस शरीर का अवसान होता है तो ये सभी तत्व अपने अपने स्वरूप में मिलकर उसी प्रकार विलीन हो जाते हैं, जिस प्रकार जल की बूंद सागर से उत्पन्न होकर अन्त में उसी में विलीन हो जाती है–

बिन्दु भी सिन्धु समान, का अचरज कासों कहैं।
हेरनहार हिरान, रहिमन अपुने आप तें।।

दर्शनशास्त्र का एक गभ्भीर रहस्य रहीम ने अत्यन्त काव्यमयी शैली में व्यक्त कर दिया है। सिद्धहस्त कवियों से ही यह सम्भव है।

अन्त में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार भावों की कोई गणना नहीं हो सकती, उसी प्रकार रहीम काव्य में पाये जाने वाले भाव भी

अगणित हैं। भावों की इस विशाल विविधता से एक ओर यदि कवि की ज्ञान गम्भीरता प्रकट होती है तो इनकी सरस अभिव्यक्ति कवि की सफल काव्य साधना की परिचायिका है।

संदर्भ–सूची

- ✓ हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
- ✓ हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास खण्ड–एक एवं खण्ड–दो– गणपतिचन्द्र गुप्त
- ✓ हिन्दी साहित्य का इतिहास पुनः लेखन की आवश्यकता– पुरवराज मारु
- ✓ हिन्दी साहित्य– एक परिचय – फणीश सिंह
- ✓ हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – बच्चन सिंह
- ✓ हिन्दी साहित्य का अलोचनात्मक इतिहास– डॉ0 रामकुमार वर्मा
- ✓ हिन्दी साहित्य का इतिहास– लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
- ✓ हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास– लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
- ✓ हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास– विजयपाल सिंह

Copyright © 2017, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.